ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 490-492

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

सार्वभौमवाद एवं अंतर्राष्ट्रवाद मे तात्विक भेद तथा गीता के लोक संग्रह के आदर्श से तुलना–एक दार्शनिक समीक्षा

डॉ0 इन्दु प्रकाश सिंह
सहायक प्रोफेसर दर्शन शास्त्र, हेमवती नन्दन बहुगुणा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय नैनी प्रयागराज (उ0प्र0) भारत

Received-19.6.2019, Revised-24.6.2019, Accepted-29.06.2019 E-mail : dripsingh22@gmail-com

सारांश – *'वैश्वीकरणवाद' का निहितार्थ है विश्व का एकीकरण। यह विश्व मानव समुदाय के तात्विक एकता का सिद्धान्त है तथा औपनिषदिक वांगमय के 'ईशावास्यमिदँसर्वं' एवं भगवद्गीता के "मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव"1 के आदर्श पर प्रतिष्ठित सम्पूर्ण विश्व मानव समुदाय को ईश्वर से व्याप्त तथा सम्पूर्ण विश्व को सूत्र के मनिये के समान आपस में सम्बद्ध मानता है। विश्व के सभी मनुष्य एक परमसत्ता की संतान हैं, अतः हम सभी एक ही परिवार के सदस्य हैं। पारस्परिक भेद जो दृष्टिगत होता है कि कोई गंगा के तट का है, तो कोई नील के तट का, कोई दजलाफरात के तट का कोई मिशीगन के तट का तो यह भेद व्यावहारिक स्तर तक ही सत्य है; क्योंकि परिवार के बढ़ जाने के कारण परस्पर भौगोलिक दूरी हो गयी; किन्तु आत्मिक दृष्टि से, उत्पत्ति की दृष्टि से, वंश परंपरा की दृष्टि से हम सभी मनुष्य वस्तुतः एक ही पिता से उत्पन्न परस्पर भिन्न–भिन्न गुण एवं कर्म से युक्त संतानें हैं। परमार्थतः हम सभी एक हैं।*

इस प्रकार 'वैश्वीकरणवाद' मानव के पारस्परिक एकता का ऐसा सिद्धान्त है जो भौगोलिक सीमा का अतिक्रमण कर मानव में निहित आत्मिकएकता का प्रतिपादन करता है। इसमें समस्त भेदों के आधार पर प्रतिष्ठित विचार एवं मान्यताएँ निष्प्रयोज्य हो जाती हैं; उस भेद का आधार चाहे जाति हो, धर्म हो, लिंग हो, समाज हो या राष्ट्र हो। इन भेदकारी उपाधियों एवं विशिष्टताओं का इसमें कोई महत्व नहीं है।

कुंजीभूत शब्द– वैश्वीकरणवाद, अन्तर्राष्ट्रवाद टैगोर, अरविन्द, गान्धी,नेहरू भगवदगीता ,लोक संग्रह,बन्धुत्व

साहित्यावलोकन– उपनिषद ,गीता , डा जे0 सी0 जौहरी, सीमा जौहरी डॉ0 ओ0 पी0 गावा, डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद वर्मा–दि पोलिटिकल फिलासफी आफ श्रीअरविन्द, गान्धी जी–यंग इंडिया– Mahadev Desai &Gandhi In Indian Village page बाल गंगाधर तिलक– गीता रहस्य।

प्रस्तावना – वैश्वीकरणवाद या सार्वभौमवाद एवं अन्तर्राष्ट्रवाद में भेद है; जिसे स्पष्ट करना आवश्यक है। वस्तुतः दोनों में अतिसूक्ष्म भेद होने के कारण लोग प्रायः इसे एक ही मान लेते हैं या एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

वैश्वीकरणवाद या सार्वभौमवाद जहाँ एक आध्यात्मिक अवधारणा है तथा मानव के तात्विक एकता पर प्रतिष्ठित है वहीं 'अन्तर्राष्ट्रवाद', भौतिक एवं राजनैतिक अवधारणा है, जो राष्ट्र के पहचान को बनाये रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व को स्वीकार करता है। डा0 जे0 सी0 जौहरी ने लिखा है कि, "अन्तर्राष्ट्रवाद जैसा इसके नाम से विदित है, विश्व में अनेक राष्ट्रों के अस्तित्व की पूर्वकल्पना एवं उनके बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध की कल्पना करता है; परन्तु सार्वभौमवाद अलग–अलग राष्ट्रों के अस्तित्व को अस्वीकार करता है ताकि यह मानव के विश्वव्यापी या 'वसुधैव कुटुम्बकम' की कल्पना का दूसरा नाम है।[2] पुनश्च, वैश्वीकरणवादी–अमरीकी या हिन्दुस्तानी जैसे लक्षणों से मानव को नहीं पहचानेगा, वह मानव को मानव समझेगा, चाहे वह पाकिस्तानी हो या भारतीय या अमरीकी या इराकी; परन्तु अन्तर्राष्ट्रवादी –राष्ट्रीय सीमाओं द्वारा उत्पन्न लोगों की पृथक पहचान को स्वीकार करते हुए भिन्न–भिन्न राष्ट्रों के मध्य प्रेम एवं सहयोग को स्वीकार करता है।

वस्तुतः दोनों का आधार मानव की एकता ही है; परन्तु अन्तर मात्र इतना है कि अन्तर्राष्ट्रवाद–'राष्ट्रवाद' की पृथक पहचान के साथ अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृत्व को महत्व देता है, जबकि वैश्वीकरणवाद में किसी भी प्रकार के पृथक पहचान की कोई गुंजाइश नहीं होतीं यदि वेदान्त की भाषा में कहें तो वैश्वीकरणवाद मानव की एकता के परिप्रेक्ष्य में अद्वैतवादी है।

ध्यातव्य है कि भारतीय चिंतक टैगोर, अरविन्द, गान्धी, नेहरू आदि सभी अन्तर्राष्ट्रवादी थे, सार्वभौमवादी या वैश्वीकरणवादी नहीं; क्योंकि ये सभी राष्ट्रीय पहचान के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व की परिकल्पना करते हैं।

टैगोर के अनुसार– यूरोपीय राज्य संगठन राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित रहा है; जिसने व्यक्ति एंव समाज की सृजनात्मक क्षमता को धूल में मिला दिया। राष्ट्रवाद के विकास का परिणाम हुआ कि मनुष्य–मनुष्य का शत्रु हो गया। टैगोर ने कहा कि,–इस अभिशाप से मानवता की मुक्ति का उपाय यह होगा कि राष्ट्रीय भेद–भाव की दीवार गिरा दी जाय, मानवीय सम्बन्धों को विश्व स्तर पर परस्पर सद्भावना, सहृदयता और सहयोग के आधार पर फिर से जोड़ दिया जाय।[3] इस तरह उन्होंने मानवीय भावना पर आधारित अन्तर्राष्ट्रवाद के विकास का समर्थन किया।

अरविन्द ने अन्तर्राष्ट्रवाद का समर्थन करते हुए कहा है कि–राष्ट्रीय जीवन को दो स्तरों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम स्तर राष्ट्रीय एकीकरण एवं दृढ़ीकरण के लिए होता है, द्वितीय स्तर पर जब वह सुदृढ़ इकाई बन जाता है, तब इकाई के रूप में अपनी सत्ता को कायम रखते हुए उसे

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए स्थान छोड़ देना चाहिए। इस स्थिति की तुलना करते हुए उन्होंने कहा है कि–यह वैसे ही संभव है जैसे व्यक्ति अपना स्थान 'परिवार' में, परिवार 'वर्ग' में, और वर्ग 'राष्ट्र' मे रखता है।[4]

गान्धीजी की मान्यता थी कि मानव को अपने राष्ट्र की भावना से आगे जाकर, सम्पूर्ण मानव जाति से प्यार करना चाहिए। गान्धी जी राष्ट्रवाद को स्वीकार करने के साथ अंध एवं उग्र राष्ट्रवाद को अस्वीकार करते थे। गान्धी जी ने कहा है कि, –"राष्ट्रवाद बुराई नहीं, यह तो सकीर्णता, स्वार्थ तथा पृथकतावादिता का आधुनिक राष्ट्रों का विषय है जो बुराई है।[5]

गांधी जी ने भारत की स्वतंत्रता के मामले को सम्पूर्ण मानव जाति के मुक्ति के साथ जोड़ना चाहा। जैसा कि उन्होंने कहा है कि,–"मै अपने देश की स्वतंत्रता चाहता हूँ, ताकि मेरे देश के संसाधनों का प्रयोग मानव जाति के लाभ के लिए किया जा सके। जिस प्रकार आज देश भक्ति का पंथ हमे यह शिक्षा देता है कि व्यक्ति को परिवार के लिए, परिवार को गांव के लिए, गांव को जिले के लिए, जिले को प्रान्त के लिए तथा प्रांत को देश के लिए बलिदान देना चाहिए, वैसे ही इस देश को स्वतंत्र होना है ताकि यदि आवश्यक हो तो यह विश्व के लाभ के लिए अपने प्राण दे सके।[6]

गांधी के अनुसार अहिंसा के आधार पर प्रतिष्ठित एक विश्व संगठन होना चाहिए जिसमें अहिंसा की नीति पर विश्वास रखने वाले सभी राज्यों के प्रतिनिधि सम्मिलित होने चाहिए। विश्व के राष्ट्रों के बीच यदा–कदा होने वाले संघर्षों को रोकने के लिए एक 'अंन्तर्राष्ट्रीय अहिंसक पुलिस बल' भी होना चाहिए। पुनः गान्धी जी ने कहा कि,–"अलग थलग स्वतंत्रता विश्व के राज्यों का लक्ष्य नहीं है। यह तो स्वैच्छिक स्वतंत्रता है। आज विश्व का बेहतर मस्तिष्क एक दूसरे के विरूद्ध युद्ध में लीन पूर्णतया स्वतंत्र राज्यों का नहीं, बल्कि मैत्रीपूर्ण स्वतंत्र राज्यों के एक संघ की कामना करता है।[7]

नेहरू जी राष्ट्रवाद के ऐसे किसी भी रूप के विरोधी थे, जो अन्तर्राष्ट्रवाद से संगति नहीं रखता है। वे संकीर्ण, अहंवादी एवं प्रसारवादी राष्ट्रवाद के विरूद्ध थे।

उन्होंने राजनैतिक तथा आर्थिक दोनों आधारों पर अन्तर्राष्ट्रवाद का समर्थन किया। 1947 के संविधान सभा में भाषण दौरान उन्होंने कहा कि,–"अन्य राष्ट्रों के साथ हमारा एक ही सामान्य उद्देश्य हो सकता है–वह उद्देश्य है किसी न किसी तरह से विश्व ढांचे के निर्माण में सहयोग देना। उसे हम चाहे एक विश्व कहें या कुछ और कहें, संयुक्त राष्ट्र संगठन के अन्तर्गत इस विश्व ढाँचे की नींव रखी जा चुकी है।[8]

स्पष्ट है कि उपरोक्त चिंतक 'राष्ट्रवाद' की भावना से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रवाद का समर्थन करते हैं; किन्तु 'राष्ट्रवाद' कहीं न कहीं मौजूद है। पुनश्च, अन्तर्राष्ट्रवाद के समर्थन का आधार भी उनका यह है कि पारस्परिक 'राष्ट्र' शान्तिपूर्वक अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें। वस्तुतः 'राष्ट्र' को सुरक्षित रखने के लिए ही ये सभी अन्तर्राष्ट्रवाद का समर्थन करते हैं; चाहे टैगोर ने घोर राष्ट्रवादियों की निंदा की है, या अरविन्द ने उग्र राष्ट्रवाद की, या गांधी ने अन्धराष्ट्रवाद की। वस्तुतः अंधराष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद के रूप मे दूसरे राष्ट्र की स्वतंत्रता एवं अमन चैन को हर लेती है। उनके अन्तर्राष्ट्रवाद में यदि मानव की एकता या मानवतावादी चिंतन का समावेश है तो वह भी इस लिए है कि राष्ट्रों के बीच पारस्परिक सहृदयता बनी रहे, इसी अर्थ में है।वे समस्त राष्ट्रों के भौगोलिक एवं राजनैतिक सीमाओं के अस्तित्व को नकार कर एक विश्वराज्य या सार्वभौमराष्ट्र की परिकल्पना नहीं करते हैं; जैसा कि वैश्वीकरणवाद स्वीकारता है। किन्तु अन्तर्राष्ट्रवाद के व्यापक दृष्टिकोंण को हम उपेक्षित नहीं कर सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रवाद, वैश्वीकरणवाद के विकास के सोपान के रूप में महत्व अवश्य रखता है; क्योंकि यह 'राष्ट्रवाद' के आगे अन्तर्राष्ट्रवाद की ओर बढ़ता तो है।

वैश्वीकरणवाद एवं लोकसंग्रह में जब हम तुलना करते हैं तो ज्ञात होता है कि, वैश्वीकरणवाद में–समस्त विश्व के मनुष्यों के मध्य तात्विक एकता का प्रतिपादन किया जाता है, इसमें भौगोलिक सीमा एवं राजनैतिक सीमा नहीं होती; किन्तु इसमें भी मात्र मनुष्यों के पारस्परिक एकता की परिकल्पना की जाती है। मनुष्य को केन्द्र में रखकर ही विश्व कल्याण की बात की जाती है। जबकि लोकसंग्रह में प्राणिमात्र या जड़ चेतन या पृथ्वीलोक से इतर लोकों–देवलोक, पितृलोक आदि के कल्याण की कल्पना की जाती है; जैसा कि तिलक जी ने गीतारहस्य में लिखा है।[9]

अतः वैश्वीकरणवाद, लोकसंग्रह के समीप होते हुए भी लोकसंग्रह से क्षीण या तुलनात्मक रूप से संकुचित अवधारणा है। वैश्वीकरणवाद के विकास का अगला चरण लोकसंग्रह में हो जाता है।

उल्लेखनीय है कि गीता में जब श्रीकृष्ण कहते हैं कि–तुम्हे लोकसंग्रह हेतु कर्म करना चाहिए 'लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।'[10] क्योंकि जनक आदि आप्त काम पुरूषों ने कर्म के द्वारा सिद्धि प्राप्ति के बाद भी कर्म को नहीं छोड़ा था, एवं स्वयं में भी सभी कामनाओं से परिपूर्ण हूँ तथा कुछ भी तथा कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं तो भी कर्म अवश्य करता हूँ–

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नान वाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।[11]

प्रश्न उठता है कि क्यों श्रीकृष्ण कर्म के प्रति इतने आग्रहशील हैं? इसका उत्तर है सम्पूर्ण 'लोक' के कल्याणार्थ जिसमें–मनुष्य, पशु, पक्षी, देवलोक, पितृलोक आदि सभी का सही ढंग से विकास एवं कल्याण हो सके, अन्यथा लोक का सर्वनाश हो जायेगा–"उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम"[12] अर्थात् यदि मैं कर्म न करूं तो सम्पूर्ण लोक की व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो जाये।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

स्पष्ट है कि कृष्ण मात्र मानव के कल्याण की बात नहीं करते; अपितु लोकसंग्रहकारी सम्पूर्ण लोक की चिंता उन्हें है।

वैश्वीकरणवाद एवं 'लोकसंग्रह' को स्पष्ट करने के परिप्रेक्ष्य में 'कौटिल्य' के उस श्लोक को नये संदर्भ में व्याख्यायित कर सकते हैं जिसमें वह कहता है कि–

त्यजेदकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत।
ग्रामं जनपदस्यार्थे ह्यात्मार्थे पृथिवीं त्यजेत।।[13]

वस्तुतः कौटिल्य के समय तक 'जनपद' या 'राज्य' की अवधारणा ही विकसित हो पायी थी, अन्तर्राष्ट्रवाद, एवं वैश्वीकरणवाद की परिकल्पना मूर्तरूप नहीं ली थी, अतः पारस्परिक त्याग की कड़ी जनपद तक सीमित है। इस कड़ी में आगे इस रूप में विस्तार संभव है कि –राष्ट्रवाद का त्याग, अन्तर्राष्ट्रवाद के लिए, अन्तर्राष्ट्रवाद का त्याग वैश्वीकरणवाद के लिए, वैश्वीकरणवाद का त्याग लोकसंग्रह के लिए कर देना चाहिए। कौटिल्य अंतिम चरण में पृथ्वी का त्याग आत्मउद्धार के लिए कहते हैं तो 'लोकसंग्रह' में आत्मोद्धार, आत्मलाभ स्वतः सन्निहित है, तथा इस हेतु पृथ्वी के त्याग करने की आवश्यकता भी नहीं है। इस दृष्टि से 'लोकसंग्रह' उनके उस त्याग श्रृंखला के दोष को भी गिरा देता है, जिस पर सम्भवतः कौटिल्य का ध्यान नहीं जा सका। कितनी अद्भुत परिकल्पना गीता की है कि जिस आत्मोद्धार या आत्मलाभ हेतु कौटिल्य आदि चिंतकों ने पृथ्वी त्याग को कहा है, उस आत्मलाभ को गीता लोकसंग्रही के लिए बिना पृथ्वी के त्याग के ही सहज रूप में सुलभ करा देती है।

निष्कर्ष

अस्तु, वास्तविक वैश्विक एकता लोकसंग्रह के आदर्श के अनुपालन से ही संभव है, जिसमें प्रत्येक मनुष्य, लोभ, मोह, मान, अपमान, शत्रुता, मित्रता को छोड़कर वैश्विक करूणा के भाव से ओतप्रोत अपने स्वाभाविक कर्मों को करते हुए विश्व के व्यापक कल्याण में योगदान देता है। तब न कोई दुःख होता है, न शोक न मोह जैसा कि ईशावास्योपनिषद् कहता है–

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकतवमनुपश्यतः।।[14]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भगवद्गीता अध्याय–7, श्लोक–7
2. डॉ0 जे0 सी0 जौहरी, सीमा जौहरी, उपरिउद्धृत ग्रंथ, पृष्ठ 496
3. डॉ0 ओ0 पी0 गावा, उपरिउद्धृत ग्रंथ, पृष्ठ 384,386
4. डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद वर्मा–दि पोलिटिकल फिलासफी आफ श्री अरविन्द .मोतीलाल बनारसीदास, 1976, पृष्ठ 253
5. गान्धी जी–यंग इंडिया– टवस.2,चंहम 1292
6. डींकमअ क्मेंप –ळंदकीप प्द प्दकपंद टपससंहम चंहम , 170
7. उपरोक्त
8. डॉ0 ओ0 पी0 गावा, उपरिउद्धृत ग्रंथ, पृष्ठ 432
9. बाल गंगाधर तिलक– उपरिउद्धृत ग्रंथ, पृष्ठ 217
10. भगवद्गीता अध्याय–3, श्लोक–20
11. भगवद्गीता अध्याय–3, श्लोक–22
12. भगवद्गीता अध्याय–3, श्लोक–24
13. चाणक्य नीति–श्यामसुन्दर दास, श्री दुर्गा पुस्तक भण्डार प्रा0 लि0, तृतीयो•ध्याय, श्लोक सं0 10, पृष्ठ 20
14. ईशावास्योपनिषद– मंत्र सं0 7 गीताप्रेस, गोरखपुर

*****